

# श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 48 — कृष्ण अपने भक्तों को प्रसन्न करते हैं

5 October 2026



एक ही अध्याय में मथुरा के दो घरों के द्वार प्रभु के लिए खुलते हैं: त्रिवक्रा का घर, जिसकी दीर्घ व्यथा को शान्त करने वे स्वयं आते हैं, और अकूर का घर, जहाँ एक भक्त उनके चरण धोता है, स्तुति का स्रोत बहाता है और हस्तिनापुर जाने का आदेश पाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञप्ति में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस अड़तालीसवें अध्याय में शुकदेवजी दिखाते हैं कि प्रभु मथुरा में दिए गए दो वचन निभाते हैं — उस स्त्री को, जिसने कभी उन्हें चन्दन अर्पित किया था, और अकूर को, जो उन्हें व्रज से लाए थे — और इन भेंटों के द्वारा सिखाते हैं कि भक्त को उनसे क्या माँगना चाहिए।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 48 (अष्टचत्वारिंश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: कृष्ण अपने भक्तों को प्रसन्न करते हैं
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); अध्याय के भीतर अक्रूर और भगवान श्रीकृष्ण
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मथुरा — त्रिवक्रा का घर और अक्रूर का निवास
- केंद्रीय विषय: त्रिवक्रा के घर प्रभु का आगमन; बलराम और उद्धव सहित अक्रूर के घर उनकी भेंट; अक्रूर की स्तुति; साधु भक्तों की प्रभु द्वारा प्रशंसा; और पाण्डवों के लिए अक्रूर को हस्तिनापुर भेजना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 1-36
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, अध्याय 48)

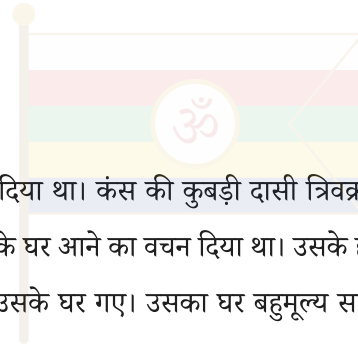
## पूर्व अध्याय का संदर्भ

सैंतालीसवें अध्याय में उद्धव ब्रज की गोपियों के बीच रहे, भ्रमर को सम्बोधित उनके प्रेम-गीत को सुना, और कई मास वहाँ उनकी चरण-रज को प्रणाम करते हुए ठहरे। फिर वे नन्द की भेंट लेकर मथुरा लौटे और कृष्ण को ब्रजवासियों की असीम भक्ति का समाचार सुनाया।

## त्रिवक्रा के घर प्रभु का आगमन

शुकदेवजी अब उस वचन की ओर मुड़ते हैं जो प्रभु ने मथुरा में प्रवेश के दिन दिया था। कंस की कुबड़ी दासी त्रिवक्रा ने कभी अपने स्वामी के लिए बना चन्दन उन्हें अर्पित किया था, और प्रभु ने उसका शरीर सीधा कर उसके घर आने का वचन दिया था। उसके हृदय में अब भी जलती उस लालसा को जानकर, सर्वदर्शी प्रभु, सबके आत्मा, उसकी कामना पूरी करने उसके घर गए। उसका घर बहुमूल्य सामग्री, मोतियों की लड़ियों, पताकाओं, चँदोवों, सुन्दर आसनों, धूप, दीप, मालाओं और सुगन्धों से सजा था।

उन्हें आते देख वह आनन्द से हड़बड़ाकर उठी और सखियों सहित पूरे आदर से उनकी अगवानी की, उत्तम आसन और पूजा-सामग्री अर्पित की। उद्धव का भी उसने सत्कार किया; किन्तु वे दिए गए आसन को सिर से छूकर भूमि पर बैठे, अपने प्रभु के सामने समान होकर बैठना न चाहते हुए। कृष्ण लोक-व्यवहार का अनुसरण करते हुए तैयार किए गए पलंग पर विराजे।





अपना वचन निभाते हुए प्रभु त्रिवक्रा के घर पधारते हैं, जो आनन्द से हड़बड़ाकर उठती है और आसन तथा पूजा-सामग्री से उनका सत्कार करती है।

फिर त्रिवक्रा ने स्नान कर सुन्दर वस्त्र, आभूषण और मालाएँ धारण कीं और लम्बी प्रतीक्षा वाले हृदय की मुस्कान लिए लजाती हुई प्रभु के पास आई। प्रभु ने उसका हाथ थामकर उसे अपने पास बैठाया और वह सान्निध्य दिया जिसकी उसे चाह थी; इस दुर्लभ कृपा का एकमात्र कारण उसका कभी अर्पित किया हुआ चन्दन था। उनके चरणों के स्पर्श और आनन्दमय प्रभु की निकटता से उसकी दीर्घकालीन व्यथा पूरी तरह मिट गई।

फिर भी, शुकदेवजी एक आह के साथ कहते हैं, उस एक अर्पण से स्वयं प्रभु को — मोक्ष के दाता को, जिन्हें पाना इतना कठिन है — पाकर उस अभागी स्त्री ने केवल इतना ही माँगा: “मेरे प्रियतम सखा, कुछ दिन यहीं रहो और मेरे साथ आनन्द करो; हे कमलनयन, मैं तुम्हारा साथ छोड़ने का साहस नहीं कर सकती।” सबकी इच्छा का सम्मान करने वाले प्रभु ने उसका वर दिया, मधुर वचनों और उपहारों से उसे सम्मानित किया, और उद्धव के साथ अपने समृद्ध घर लौट आए। शुकदेवजी तब इस भेंट की शिक्षा स्पष्ट कहते हैं:

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।

यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥

*durārādhyam samārādhy viṣṇum sarveśvareśvaram yo vṛṇīte mano-grāhyam asattvāt kumanīṣy asau*

अर्थ: सब ईश्वरों के भी ईश्वर, दुराराध्य विष्णु की भलीभाँति आराधना करके जो उनसे केवल मन को रुचने वाली वस्तु माँगता है, वह अपनी क्षुद्रता के कारण कुबुद्धि है। (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 11)

## अक्रूर के द्वार पर

अक्रूर से कोई कार्य कराने और उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से प्रभु फिर बलराम और उद्धव सहित सम्मानपूर्वक अक्रूर के निवास पर गए। दूर से ही इन नरश्रेष्ठ रत्नों को — अपने ही बन्धुओं को — आते देख अक्रूर आनन्द से उठे, उन्हें गले लगाया और स्वागत किया। अल्पायु होने पर भी उन्होंने दोनों को प्रणाम किया, क्योंकि वे जानते थे कि वे कौन हैं; प्रत्यभिवादन कर उनके आसन ग्रहण करने पर अक्रूर ने विधिपूर्वक उनकी पूजा की।



अक्रूरजी श्रीकृष्ण और बलराम के चरण धोते हैं, उस जल को अपने सिर पर छिड़कते हैं, और वस्त्र, चन्दन, मालाओं तथा रत्नों से उनका पूजन करते हैं।

अक्रूर ने उनके चरण धोए और उस जल को चारों ओर अपने सिर पर छिड़का। पूजा-सामग्री, उत्तम वस्त्र, चन्दन, मालाओं और श्रेष्ठ रत्नों से उनका सत्कार किया; फिर विनय से झुके हुए उन्होंने सिर नवाया, उन दोनों के चरण अपनी गोद में लिए और धीरे-धीरे दबाते हुए बोलने लगे।

## अक्रूर की स्तुति

“सौभाग्य से,” अक्रूर ने कहा, “आप दोनों ने अनुचरों सहित पापी कंस का वध किया है, और आपका यह कुल एक दुस्तर संकट से उबरकर समृद्ध हुआ है। आप ही प्रधान और पुरुष हैं, जगत् के उपादान और निमित्त कारण, और स्वयं जगत्-रूप भी; आपके अतिरिक्त न कोई कारण है, न कार्य। अपनी शक्तियों से इस विश्व को रचकर आप उसके अन्तर्यामी रूप में उसमें प्रवेश करते हैं, हे कृष्ण, और इसीलिए सुनने और देखने वालों को अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं — जैसे पंचभूत समस्त चर-अचर प्राणियों में अनेक रूपों में प्रकट होते हैं।”



दोनों के चरण अपनी गोद में लिए अक्रूरजी प्रभु की स्तुति करते हैं — जो जगत् के कारण हैं और जब-जब वेदमार्ग बाधित होता है, तब-तब अवतरित होते हैं।

फिर अक्रूर ने प्रभु की सर्व-बन्धन-मुक्तता का गान किया। “अपनी ही शक्तियों — रज, सत्त्व और तम — से आप विश्व की रचना, पालन और संहार करते हैं, फिर भी उन गुणों या कर्मों से कभी बँधते नहीं; क्योंकि आप स्वयं चैतन्य हैं और अज्ञान आपको छू भी नहीं सकता। देह आदि उपाधियाँ आत्मा की सिद्ध नहीं होतीं, अतः जन्म या भेद आत्मा को वास्तव में स्पर्श नहीं करते; आपके लिए न बन्धन है, न मोक्ष, और जो वैसा दिखता है वह केवल हमारे मन का भ्रम है।” यहाँ से अक्रूर प्रभु के अवतरण के कारण पर आए:

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय

यदा यदा वेदपथः पुराणः ।

बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भि-

स्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥

*tvayodito 'yaṁ jagato hitāya yadā yadā veda-pathaḥ purāṇaḥ bādhyeta pākhaṇḍa-pathair asadbhis tadā bhavān sattva-guṇaṁ bibharti*

अर्थ: जगत् के हित के लिए आपके द्वारा कहा गया यह सनातन वेदमार्ग जब-जब दुष्टों के पाखण्ड-पथों से बाधित होता है, तब-तब आप उसे पुनः स्थापित करने के लिए शुद्ध सत्त्वगुण का रूप धारण करते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 23)

“और इसलिए, हे प्रभु,” अक्रूर ने आगे कहा, “आप अब अपने अंश बलराम सहित वसुदेव के घर अवतरित हुए हैं — सैकड़ों अक्षौहिणी आसुरी राजाओं का वध कर पृथ्वी का भार हल्का करने और यदुकुल का यश फैलाने के लिए। आज हमारा घर परम धन्य है, क्योंकि आप उसमें पधारे हैं — आप, जगत् के पिता और गुरु, इन्द्रियों से परे, समस्त देवों, पितरों, भूतों और राजाओं में विद्यमान, जिनके चरणों का जल गंगा बनकर त्रिलोकी को पवित्र करता है।”

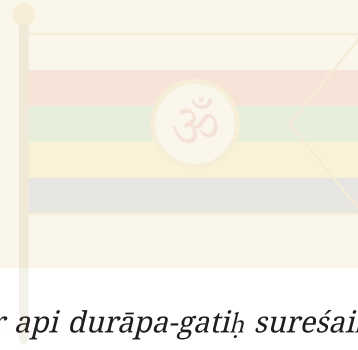
कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्  
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।  
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-  
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

*kaḥ paṇḍitas tvad-aparaṁ śaraṇaṁ samīyād bhakta-priyād ṛta-gīrah suhṛdaḥ kṛta-jñāt sarvān  
dadāti suhṛdo bhajato 'bhikāmān ātmānam apy upacayāpacayau na yasya*

अर्थ: कौन विद्वान आपके अतिरिक्त किसी और की शरण लेगा — आप जो भक्तों से प्रेम करते हैं, जिनकी वाणी सत्य है, जो सबके सुहृद और कृतज्ञ हैं, और जो अपना भजन करने वालों को उनकी सब कामनाएँ, यहाँ तक कि अपना वह स्वरूप भी दे देते हैं जिसमें न वृद्धि है, न क्षय? (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 26)

फिर वह प्रार्थना आई जिसमें अक्रूर की सारी स्तुति अपना लक्ष्य पाती है। उन्होंने न धन माँगा, न रक्षा, अपितु उस रस्सी के काटे जाने की याचना की जो हर गृहस्थ के हृदय को बाँधे रखती है।

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो  
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।  
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-  
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥



*diṣṭyā janārdana bhavān iha naḥ pratīto yogeśvarair api durāpa-gatiḥ sureśaiḥ chindhy āśu naḥ  
suta-kalatra-dhanāpta-geha- dehādi-moha-raśanāṁ bhavadīya-māyām*

अर्थ: हे जनार्दन, सौभाग्य से आप यहाँ हमारे सामने प्रकट हुए हैं — आप, जिनकी गति योगेश्वर और देवेश्वर भी सहज नहीं पा सकते। कृपया शीघ्र हमारी उस माया-रूपी रस्सी को काट दीजिए, जो हमें पुत्र, पत्नी, धन, स्वजन, घर और देह आदि के मोह से बाँधे हुए है। (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 27)

त्रिवक्रा और अक्रूर, दोनों ने अपनी छत के नीचे उन्हीं प्रभु को पाया और दोनों को जो माँगा वह मिला; किन्तु एक ने उनके सान्निध्य के कुछ और दिन माँगे, दूसरे ने आत्मा और प्रभु के बीच खड़ी हर वस्तु से मुक्ति। प्रभु दोनों को देते हैं, क्योंकि वे सबकी इच्छा का आदर करते हैं, पर शुकदेवजी बताते हैं कि कौन-सी प्रार्थना उनके योग्य है: जो भक्त जानता है कि उसके सामने कौन खड़ा है, वह इन्द्रियों की शर्तों पर उनका साथ नहीं, अपितु उनकी माया का कट जाना माँगता है।

## प्रभु का उत्तर: देवों और तीर्थों से ऊपर सन्त

अपने भक्त द्वारा इस प्रकार सम्मानित और स्तुत होकर श्रीहरि मुस्कुराए और मधुर वचनों से मानो अक्रूर को मोहते हुए बोले। “आप हमारे गुरु, चाचा और प्रशंसनीय बन्धु हैं,” उन्होंने कहा; “हम आपकी सन्तान हैं, जिनकी रक्षा, पोषण और अनुकम्पा आपको सदा करनी है। अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को आप-जैसे महाभाग पुरुषों की सेवा देवताओं से भी अधिक सदा करनी चाहिए; क्योंकि देवता स्वार्थ से प्रेरित होते हैं, पर साधु बिना किसी प्रतिफल की आशा के भला करते हैं।”



मुस्कुराते हुए प्रभु अक्रूरजी को अपना गुरु और सुहृद कहते हैं, घोषित करते हैं कि साधु दर्शन-मात्र से पवित्र करते हैं, और पाण्डुपुत्रों का हाल जानने उन्हें हस्तिनापुर भेजते हैं।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥

*na hy am-mayāni tīrthāni na devā mṛc-chilā-mayāḥ te punanty uru-kālena darśanād eva sādhaḥ*

अर्थ: ऐसा नहीं कि जल-रूप तीर्थ और मिट्टी-पत्थर के देवता पवित्र नहीं करते; किन्तु वे दीर्घ काल में पवित्र करते हैं, जबकि साधु अपने दर्शन-मात्र से। (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 31)

## हस्तिनापुर का कार्यभार

अपने भक्त को देवों और पुण्य-नदियों से ऊपर रखकर प्रभु ने उन्हें वह कार्य सौंपा जो ऐसे ही मित्र को सौंपा जा सकता था।

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ।

जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाव्हयम् ॥ ३२ ॥

*sa bhavān suhṛdām vai naḥ śreyāñ chreyaś-cikīrṣayā jīḥāsārthaṁ pāṇḍavānām gacchasva tvaṁ gajāhvayam*

अर्थ: आप हमारे सुहृदों में श्रेष्ठ हैं; अतः पाण्डुपुत्रों का कल्याण करने की इच्छा से उनका हाल जानने हस्तिनापुर जाइए। (स्कन्ध 10, अध्याय 48, श्लोक 32)

“हमने सुना है,” प्रभु ने समझाया, “कि पिता के देहान्त के बाद पाण्डु के छोटे-छोटे पुत्रों को उनकी माता सहित राजा धृतराष्ट्र अपनी राजधानी ले आए हैं, और वे वहाँ बड़े दुःख में रह रहे हैं। मन्दबुद्धि राजा, जो अन्धा है और अपने दुष्ट पुत्र के वश में है, अपने भतीजों के प्रति समान व्यवहार नहीं करता। अतः जाइए और उनके प्रति उसका आचरण जानिए, अच्छा हो या बुरा; उसे निश्चित रूप से जानकर हम वह सब करेंगे जिससे हमारे सुहृदों का कल्याण हो।”

अक्रूर को इस प्रकार आदेश देकर, भक्तों के दुःख हरने वाले सर्वसमर्थ श्रीहरि संकर्षण और उद्धव के साथ अपने निवास लौट गए।

## इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु से वही माँगें जो उनके योग्य हो। जिन्हें देवता भी कठिनाई से प्रसन्न कर पाते हैं, उनकी आराधना करके भी संकीर्ण हृदय का भक्त केवल मन को रुचने वाली वस्तु माँगता है — श्लोक 11 की यही चेतावनी है। हम क्या माँगते हैं, इसी में हमारी भक्ति का माप प्रकट होता है।
2. वेदमार्ग की रक्षा के लिए प्रभु अवतरित होते हैं। जब-जब सनातन मार्ग पाखण्ड से अवरुद्ध होता है, प्रभु शुद्ध सत्त्व का रूप धारण करते हैं, जैसा अक्रूर श्लोक 23 में स्वीकारते हैं; वसुदेव के घर उनका जन्म पृथ्वी के भार-हरण के लिए है।
3. उनके सिवा कोई शरण नहीं। श्लोक 26 पूछता है कि कौन बुद्धिमान अन्यत्र आश्रय खोजेगा, जब प्रभु अपने भक्तों को सब कुछ, यहाँ तक कि अपना अक्षय स्वरूप भी दे देते हैं।
4. सर्वोच्च प्रार्थना माया के कटने की है। श्लोक 27 में अक्रूर की चरम याचना इस संसार की किसी वस्तु के लिए नहीं, अपितु पुत्र, पत्नी, धन, घर और देह के मोह से छुटकारे के लिए है।
5. साधु दर्शन-मात्र से पवित्र करते हैं। प्रभु स्वयं श्लोक 31 में घोषित करते हैं कि तीर्थ-जल और देव-प्रतिमाएँ धीरे-धीरे पवित्र करती हैं, पर साधु तत्काल; ऐसे पुरुष स्वार्थी देवताओं से भी अधिक सम्मान के योग्य हैं। और अक्रूर को हस्तिनापुर भेजकर प्रभु दिखाते हैं कि उनकी करुणा राज्यों के पार अपने दुःखी मित्रों तक पहुँचती है।

## एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय से हमारे साथ यह रह जाता है कि प्रभु के सामने बैठे दो भक्त कितने भिन्न ढंग से बोले। वर्षों से झुकी हुई त्रिवक्रा, जिसकी निष्ठा इतनी थी कि उसने अपने स्वामी का चन्दन प्रभु को दे दिया, उनके साथ के कुछ और दिनों से बेहतर कुछ सोच न सकी। हमसे उसका तिरस्कार नहीं माँगा गया; प्रभु ने भी नहीं किया। उन्होंने उसकी इच्छा पूरी की, उसे सम्मान के साथ छोड़ा, और उनका चरण-स्पर्श उसके परम कल्याण का आधार बना। पर शुकदेवजी हमें कोमलता से बताते हैं कि वह कहीं अधिक माँग सकती थी। अक्रूर दिखाते हैं कि वह “अधिक” क्या है। वे भी चाहते थे कि प्रभु रुकें — कुछ दिन उनके घर में नहीं, अपितु सदा के लिए उनके हृदय में, जहाँ उन्हें बाहर धकेलने वाला कुछ शेष न रहे;

इसीलिए उन्होंने माया की रस्सी काटने की प्रार्थना की। हममें से अधिकांश त्रिवक्रा की तरह प्रार्थना करते हैं: राहत, सुख, और यह कि प्रभु हमारे जीवन में वैसे ही बने रहें जैसा वह है। यह अध्याय हमें अक्रूर की तरह प्रार्थना करने का निमन्त्रण देता है, ताकि हमारी आसक्तियाँ ढीली पड़ें और जो प्रभु हमारे घर पधारे हैं, उन्हें कभी लौटना न पड़े।

## एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु से कुछ माँगने से पहले रुककर सोचें कि यदि वे अक्रूर के द्वार की भाँति आपके द्वार पर खड़े हों, तो आप क्या माँगेंगे। फिर अपने शब्दों में अक्रूर की प्रार्थना दोहराएँ: “मुझे मेरी वस्तुओं और इस देह से बाँधने वाली आसक्ति की रस्सी शीघ्र काट दीजिए, ताकि मेरे और आपके बीच कुछ न रहे।” यदि आज किसी सन्त से भेंट हो, तो यह स्मरण करते हुए उनका आदर करें कि ऐसे पुरुष दर्शन-मात्र से पवित्र करते हैं। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## उपसंहार

यह अध्याय प्रभु को मथुरा के दो घरों में ले जाता है और दोनों को समृद्ध कर छोड़ता है। त्रिवक्रा के घर वे चन्दन के एक उपहार का प्रतिदान अपनी उपस्थिति से करते हैं और उसका वर देते हैं; अक्रूर के घर वे पूजित होते हैं, माया काटने की याचना में चरम पर पहुँचने वाली स्तुति सुनते हैं, अपने भक्त को देवों और तीर्थों से ऊपर रखते हैं, और उसे पाण्डवों के लिए हस्तिनापुर भेजते हैं। दोनों भेंटों को जोड़ने वाली एक ही शिक्षा है — प्रभु के निकट होने पर हम जो प्रार्थना करते हैं, उसका मूल्य: हम उनसे स्वयं उन्हीं को माँगना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अध्याय 48।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

## जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-48-krishna-pleases-his-devotees-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-48-krishna-pleases-his-devotees-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

